

मेरा रोज़नामचा

एक शिक्षक की जीवन यात्रा

मुकेश मालवीय



मैं सरकारी स्कूल का शिक्षक हूँ। आज से लगभग अट्ठाइस वर्ष पहले यह यात्रा प्रारम्भ हुई थी। शुरुआती वर्षों में मैं एक ऐसे रचनात्मक शैक्षिक कार्यक्रम एवं उससे सम्बन्धित शिक्षक प्रशिक्षण से गुज़रा जिसका असर न केवल मेरे शिक्षकीय क्रियाकलापों पर हावी हुआ बल्कि उसने

मेरे जीवन में भी एक मौलिक वैचारिकता की जगह बनाई। ये प्रशिक्षण एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से सम्बन्धित थे। आज मैं उन प्रशिक्षणों के बारे में कुछ बताने की बजाय उनके असर से उपजे कुछ काम बताना चाहता हूँ। शुरु के लगभग पन्द्रह साल मैं एक छोटे-से गाँव पावरझण्डा का गुरुजी

था। मेरे गाँव पहावाड़ी से इस गाँव तक मैं सायकल से जाया करता था। इस गाँव को मैं कितना जान सका, पहले इसी पर बात कर लें!

148 घरों की इस बस्ती में बच्चों के सर्वे के लिए वर्ष में एक बार मुझे हर-एक घर जाना होता। इसी दौरान मैंने एम.एन. श्रीनिवास की किताब *यादों से रचा एक गाँव* पढ़ी। लेखक नृतत्वशास्त्री हैं, बहुत समय लगाकर वे एक गाँव का अध्ययन करते हैं और उनके द्वारा एकत्रित जानकारी का सारा रिकॉर्ड एक घटना में जल जाता है। बिना निराश हुए वे यादों के सहारे ही उस गाँव को रचते हैं और उनकी यह किताब हमारे सामने आती है। इस किताब को पढ़कर मेरे मन में विचार आया कि मैं भी अपने गाँव को जानूँ-समझूँ। मैंने ग्रामवासियों से मेलजोल बढ़ाया, बातचीत की और अपने गाँव को समझने की कोशिश की। पर गाँव की बातें करने से पहले शायद यह सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है कि गाँव के स्कूल-मास्टर के पास यह किताब कैसे आई। इसका विस्तृत उत्तर तो मैंने *संदर्भ अंक-65* में छपे लेख में, *मेरा घर, गाँव, स्कूल और किताबें* में लिखा है और संक्षिप्त उत्तर है कि *एकलव्य* का प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम जिसका मैं हिस्सा था, उसमें पढ़ने की संस्कृति, परिस्थिति और माहौल की सहज उपलब्धता थी जिससे किताबों की दुनिया में विचरण होता चला गया। आओ वापस गाँव में चलें।

ऐसा है मेरा गाँव

आज के मेरे इस गाँव को तो मैं देख-सुन पा रहा था पर मेरे मन में गाँव के अतीत को लेकर कुछ सवाल थे। अपनी इस उत्सुकता और गम्भीरता को लेकर मैंने इस गाँव के बुजुर्ग सदस्यों से बातचीत शुरू की। पुराने समय को खंगालने के लिए मुझे उनकी बातों के प्रसंगों का रुख बीत चुके ज़माने की तरफ मोड़ना पड़ा। इस तरह उनकी रोचक बातों से 100 वर्ष पहले के पावरझण्डा का नक्शा समझने की कोशिश की। मैंने उनसे जाना कि जब वे छोटे थे तब उनके घर के आसपास किन के घर थे। मैंने जाना कि यह गाँव मूलतः आठ परिवार से प्रारम्भ होता है और आज से कुछ वर्ष पहले 148 परिवार का फैलाव कैसे लेता है। इसके लिए मौजूद परिवारों का आपस में अन्य परिवारों से क्या रिश्ता है, इसकी जानकारी इकट्ठा की। इन जानकारियों से मुझे पता चला कि ये रिश्ते तो बहुत उलझे हुए हैं। इन्हें सुलझाने और व्यवस्थित समझने के लिए मैंने एक सरनेम (उपनाम) वालों की अलग-अलग सूचियाँ तैयार कीं। इस तरह यहाँ धुर्वे, उइके, परते, भलावी, मर्सकोले परिवार थे। इनमें ज़्यादा संख्या धुर्वे और उइके परिवारों की थी। मैंने कोडिंग का सहारा लिया। जैसे धुर्वे परिवार के वर्तमान 18 घर किसी समय में मोती धुर्वे से प्रारम्भ होते हैं। इस परिवार को मैंने 'डी' कोड दिया। मोती धुर्वे

के दो लड़के झब्बल (डी 1) और सक्के (डी 2) हुए। इस तरह आज के विलेश धुर्वे का कोड (डी 1, 2, 3, 1) है। इसका मतलब है, यह मोती धुर्वे के पहले लड़के झब्बल के दूसरे लड़के रामशा के तीसरे लड़के हरीशचंद्र का बड़ा लड़का है। इसी तरह अन्य परिवार भी एक वंशवृक्ष से जुड़े। इस काम को करने के दौरान मुझे लगा कि इससे सिर्फ परिवारों का फैलाव ही पता चल रहा है।

अब प्रश्न था कि सिर्फ लड़कों की जानकारी ही क्यों इकट्ठी की जाए। तब मैंने इस खोजबीन में दो बातें और शामिल कीं। उस परिवार में लड़कियाँ कौन और कितनी थीं और दूसरी बात लड़कों और लड़कियों की शादी कहाँ-कहाँ हुई। यह पता चला कि परिवार बड़ा हो जाने पर अपने मूल मकान के पास ही विघटित परिवार अपना मकान बना लेता या अपने

खेत में बस जाता। शादियों का एक स्पष्ट पैटर्न था। पुराने समय में ज़्यादातर विवाह इसी गाँव में या आसपास के गाँव में हो रहे थे। इस समाज में दो तरह के गोत्र थे। सात देवों को मानने वाले और छः देवों को मानने वाले। शादी सम्बन्ध में इन गोत्रों का महत्व था। ज़्यादातर रिश्ते मामा और बुआ के बच्चों के बीच हुए थे। मैंने पढ़ा था कि दक्षिणी प्रान्तों के द्रविड़ मूल के समाज में इस तरह के रिश्तों की प्रथा है। यह गाँव गोंड आदिवासी परिवारों का था। बाद में इतिहास और समाजों का अध्ययन करने वाले एक साथी से यह पता चला कि गोंड जनजाति भी द्रविड़ मूल से है।

इसी दौरान मैंने एक छोटा टेपरिकॉर्डर खरीदा और उन बुजुर्गों की बातों को रिकॉर्ड भी किया। कितने ही किस्से मेरे पास हैं पावरझण्डा के।



उन बुजुर्गों की निगाह से मैं अपनी उम्र से सौ साल पहले का समय देख सका और आज के गाँव की आपसी बुनावट को जान सका।¹

जन्म की तारीखें

इसी सर्वे आधारित काम से एक अन्य शोध की शुरुआत हुई। हर परिवार में माँओं से उनके बच्चों की जानकारी इकट्ठी करने के दौरान उस परिवार की बुजुर्ग महिला से भी बातचीत होती जिसमें पुराने दिनों की बातों के अलावा उनकी औलादों से सम्बन्धित पूछताछ को मैं दर्ज करता। हर एक वृद्ध माता के पास अपने एक-दो ऐसे बच्चों की यादें भी होतीं जो बड़े नहीं हो सके। इस तरह



मेरे पास इस गाँव के दो अवधि (पीढ़ियों) के अन्तराल में जन्मे बच्चों का अभिलेख बन गया। गाँव में एक महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता भी काम करती थी। इनके पास एक रजिस्टर होता है जिसमें परिवार नियोजन के उद्देश्य से सभी लक्षित माताओं का रिकॉर्ड रखा जाता है। इस रजिस्टर के अध्ययन से बच्चों

के जन्म, गर्भ में मृत्यु, माँ की मृत्यु आदि के केवल आँकड़े ही नहीं मिले बल्कि मातृत्व का सन्ताप और असहायता को भी मैं महसूस कर सका। आपसे इस अध्ययन का एक रोचक तथ्य साझा करना चाहता हूँ - आज से पचास-साठ वर्ष पहले इस गाँव की हर एक माँ के जहाँ औसतन तीन से

¹ मेरा यह काम राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद, दिल्ली द्वारा आयोजित विज्ञान शिक्षक कॉंग्रेस के राष्ट्रीय सेमिनार, 2004 में चयनित और प्रकाशित हुआ।

चार बच्चे जीवित बच रहे थे, वहीं आज (दस वर्ष पहले) हर माँ की औसतन तीन से चार बच्चों पर नसबन्दी की जा रही है।²

पावरप्लण्डा 57 सालों में

इस शीर्षक से मेरा एक लेख *संदर्भ* पत्रिका के अंक-19 में छपा था। यह लेख मेरे स्कूल के दाखिल-खारिज पंजी रजिस्टर से निकला। आज्ञादी के पहले प्रारम्भ हुए इस प्राथमिक स्कूल में इस समय तक 648 बच्चे दर्ज हुए। इस लेख में मैंने 60 वर्ष से गाँव में मौजूद स्कूल के हस्तक्षेप को पकड़ने की कोशिश की। अधिकांश बच्चे (37%) पहली कक्षा में ही स्कूल छोड़ रहे थे। पाँचवीं कक्षा तक स्कूल में बने रहने वाले बच्चों का प्रतिशत केवल 6% था। लड़कियों की शिक्षा थोड़ी और कमतर थी। इन 648 बच्चों में लड़कियों की संख्या 113 थी जिनमें से 78 पहली कक्षा में ही स्कूल से बाहर हो गईं। पहली कक्षा में स्कूल छोड़ने का मतलब यह है कि ये बच्चे स्कूल गए ही नहीं या कुछ-एक दिन स्कूल गए और फिर एक-दो साल के बाद इनका नाम खारिज किया गया। इस तरह इस पंजी के पन्नों पर लिखे क्रमांक और नामों ने सामूहिक और व्यक्तिगत कई नए अर्थ बनाने में मदद की। चूँकि ये अधिकांश नाम गाँव में मौजूद ही थे इसलिए मैं इनके जीवन पर

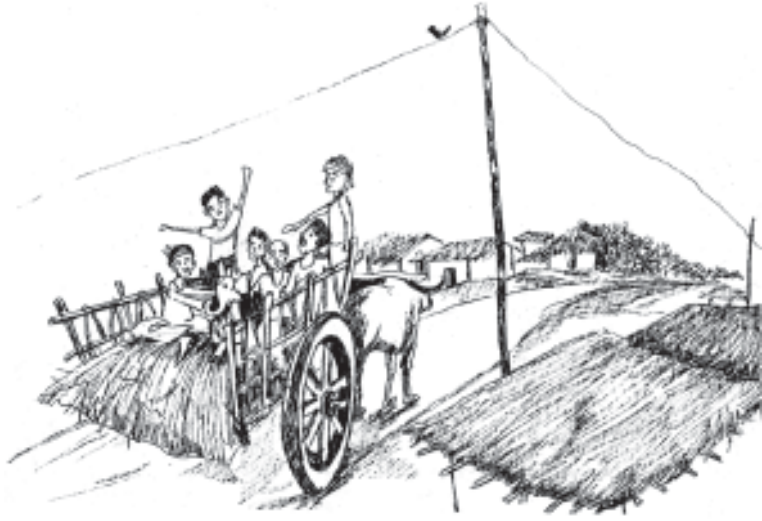
स्कूल के असर को भी बाँच सका।

इस लेख की शुरुआत गाँव के परिवारों के आर्थिक विश्लेषण से होती है जिसका मुख्य आधार परिवार के पास मौजूद कृषि भूमि और पशुधन है। भूमि सम्बन्धी जानकारी मैंने पटवारी के रिकॉर्ड से हासिल की। गाँव के 70 परिवारों के पास लगभग एक हेक्टेयर या उससे कम भूमि है, शेष के पास इससे कुछ ज़्यादा। क्या आप अनुमान लगा सकते हो कि इन आँकड़ों का कोई सीधा या टेढ़ा-मेढ़ा सम्बन्ध क्या स्कूल के दाखिल-खारिज रजिस्टर से जुड़ता होगा? मेरे पास इस गाँव के सिर्फ आँकड़े ही नहीं, जीवन भी है।

सार्वजनिक गणेशोत्सव

इस गाँव में सामूहिक प्रयास से प्रतिवर्ष गणेशोत्सव का आयोजन किया जाता था। हर वर्ष किसी व्यक्ति-विशेष के घर-आँगन में ही गणेशजी विराजमान होते थे। एक बार हमने मिलकर तय किया कि गणेशजी को इस बार एक बड़ी बैलगाड़ी में बिठाया जाए। गाड़ी को अच्छे-से सजाकर एक घर के आँगन में रखा गया, इसमें गणेशजी विराजे। अब हर दिन जिस घर से भी आमंत्रण मिलता, उस दिन गणेशजी की सवारी बड़े जतन से हम सब खींचकर उस घर तक पहुँचाते। उस वर्ष गणेशजी दस-बारह घरों के अतिथि बने। इस नवाचार ने पूरे गाँव

² मेरा यह काम राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद, दिल्ली और साइंस सेंटर, ग्वालियर, म.प्र. द्वारा आयोजित विज्ञान शिक्षक कॉंग्रेस के राष्ट्रीय सेमिनार, 2003 में चयनित और प्रकाशित हुआ।



में खूब उल्लास भरा।

स्कूल की कुछ बातें

में इस स्कूल में शुरुआत से ही अकेला शिक्षक था और वह भी लगभग दस वर्षों तक। इस अकेली शिक्षकीय बादशाहत ने निरंकुश नवाचारों की खूब दौलत इकट्ठी की। क्या आप घोटल-मोटल को जानते हैं? मेरे स्कूल के बच्चों ने इन दो चरित्रों को सृजित किया था।

घोटल-मोटल खोपरा खाएँ।

गाड़ी पर बैठकर जतरा जाएँ।

इन दो लाइनों से सीखने-सिखाने की नई इबारत लिखी गई। इन लाइनों में चार जगह नई संज्ञाएँ डालकर हर बार नया दृश्य रचा जा सकता है। यह मुझे बच्चों ने ही सिखाया। जैसे-

चिन्टू-पिन्टू जलेबियाँ खाएँ।

सायकल पर बैठकर चाँदनी चौक जाएँ।

घोटल और मोटल समूह में बँटकर हमने बहुत-सी गतिविधियाँ बनाईं। घोटल-मोटल के इन कारनामों की एक सीरीज़ *चकमक* पत्रिका में लगभग एक वर्ष तक चली।

घोटल-मोटल के ज़रिए बच्चों के विवेक का इस्तेमाल कर जो सीखना-सिखाना मेरे स्कूल में हुआ, उसकी बात दूर तलक गई। उस समय मेरे साथ काम कर रहे शिक्षा को समझने वाले साथियों ने मुझे इन अनुभवों को लिपिबद्ध करने के लिए प्रोत्साहित किया। पावरझण्डा का यह स्कूल शैक्षिक पत्रिकाओं में जगह बनाते हुए राज्य की पाठ्यपुस्तकों में और फिर एन.सी.ई.आर.टी. की किताबों में भी

दिखने लगा।

इस सीखने-सिखाने का मतलब यह कतई नहीं है कि इस स्कूल में खूब शिक्षा हो रही थी। बाहर से देखने पर तो यहाँ असीम अराजकता मिल सकती थी। इस स्कूल में क्या हो रहा था, उसके बारे में मैंने अपने कुछ लेखों में लिखा है जो *संदर्भ* और अन्य शैक्षिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इस स्कूल पर बनी फिल्म *ए टीचर्स जर्नी* देखी जा सकती है। यह फिल्म जापान में देखे जाने के बाद भारत में कई शैक्षिक मंचों पर शिक्षा का संवाद शुरू करने में मदद कर रही है। इस स्कूल ने मुझे कितने ही कथानक दिए। कुछ-एक को याद रखकर मैंने इनका

इस्तेमाल एन.सी.ई.आर.टी. की बरखा सीरीज़ की कहानियों, *रूम टू रीड* की कहानी की किताबों में, *चकमक*, *संदर्भ*, *प्लूटो*, *फिरकी* में लिखी कहानियों-कविताओं व संस्मरणों में किया है और आज भी कर रहा हूँ।

इस लेख को लिखकर खुद पढ़ते हुए मुझे लगा कि इसमें मेरी आत्मप्रशंसा का भाव झलक रहा है। तो स्पष्टीकरण यह है कि इन कामों के पीछे वह समझ थी जो प्राशिका (प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम) से बनी। दूसरी बात यह कि गाँव के सरकारी स्कूल में काम करने की आज़ादी कितने नए रास्तों पर ले जा सकती है, यह इसकी कुछ बयानबाज़ी है, बस।

मुकेश मालवीय: शासकीय माध्यमिक शाला, पहावाड़ी (शाहपुर, बैतूल, म.प्र.) में बहुत साल पढ़ाया है। वर्तमान में ज्ञानोदय विद्यालय, होशंगाबाद में पदस्थ हैं।

सभी चित्र: हीरा धुर्वे: भोपाल की गंगा नगर बस्ती में रहते हैं। चित्रकला में गहरी रुचि। साथ ही 'अदर थिएटर' रंगमंच समूह से जुड़े हुए हैं।

